प्रथम प्रकरण

1.1 गढ़वाल की भू स्त्रातेजिक अवस्थिति

1.2 गढ़वाल का ऐतिहासिक विरासत

(1.1) गढ़वाल की भू स्त्रातेजिक अवस्थिति

पृष्ठभूमि :– प्राचीन काल में मानव का इतिहास बहुत सीमा तक भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता था, धरातलीय विस्तार, प्राकृतिक वनस्पति, जलवायु, यातायात, खनिज पदार्थ इत्यादि ऐसे भौगोलिक कारक है जो मानव सभ्यता के इतिहास की प्रारम्भ से घेरे हुये है। राष्ट्र के निर्माण, सुरक्षा एवं राष्ट्रीय शक्ति के विकास में अनेक देशों की युद्धकला को प्रभावित करने में इन भौगोलिक कारकों का स्थान सर्वोपरि है।

वर्तमान समय में भौगोलिक कारकों के युद्ध कौशल पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन भू–युद्ध कौशल अथवा युद्ध–कौशलात्मक भूगोल (Geo – Strategy) के अन्तर्गत किया जाता है। Geo – Strategy दो शब्दो से मिल कर बना है। Geo – भू तथा Strategy अर्थात युद्ध कौशल, ''जब किसी देश का भूगोल का अध्ययन युद्ध कौशलात्मक दृष्टिकोण से करते हैं तो इसे युद्ध कौशलात्मक भूगोल कहते है''।[1]

वर्तमान में Geo – Strategy शब्द का हिन्दी रुपान्तरण 'भू स्त्रातेजी' ही कर लिया गया है। यद्यपि 'भू स्त्रातेजी' शब्द व्याकरण की दृष्टि से युद्ध नही है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से यह Geo – Strategy के पूर्ण अर्थ के अधिक निकट है। हिन्दी के उपर्युक्त सभी शब्दों में 'भू' का तात्पर्य पृथ्वी का कोई एक भाग तथा कूटनीति, कूट योजना, युद्ध कौशल, स्त्रातेजी एवं सामरिकी से तात्पर्य उस भौगोलिक क्षेत्र का युद्ध की दृष्टि से अधिकतम लाभदायक ढंग से उपयोग करने की कला से लिया गया है। किसी भी भू–भाग विशेष का यौद्धिक अथवा सैनिक दृष्टि से अनुकूल प्रयोग युद्ध में 'अल्प रक्तपात' से सफलता की और ले जाता है। 'अल्प रक्तपात' से युद्ध में सफलता प्राप्त करना एक सेनानायक की दूरदर्शिता एवं कुशलता का परिचायक होता है। 'अल्प रक्तपात' की युद्ध कला भौगोलिक पर्यावरण पर आधारित होती है। भौगोलिक पर्यावरण के अन्तर्गत अवस्थिती (Location), आकृति और विस्तार (Shape and Extent), सीमायें व सीमान्त (Boundary and Frontier) तथा जलवायु जनसंख्या मुख्य रुप से आते है।[2]

उपर्युक्त सभी तत्वों का युद्ध की दृष्टि से विश्लेषण 'भू–सामरिक' अध्ययन कहलाता है। यहीं तत्व राष्ट्र की रक्षा एवं सुरक्षा को प्रभावित करते हैं।

भू–सामरिकी एवं भू–युद्ध–कौशल आदि के महत्व को प्राचीन काल से ही गम्भीरता से समझा गया है। युद्ध विद्या के प्रसिद्व चीनी विद्वान 'सतजू' ने कहा है कि '' युद्ध की विजय में_धरातल की बनावट का मुख्य स्थान होता है।''

नेपोलियन के अनुसार युद्ध की योजनायें वातावरण के अनुकूल सेनापति की योग्यतानुसार, सैनिकों के गुणों को ध्यान में रखकर तथा युद्ध भूमि की बनावट के अनुसार परिवर्तित करनी चाहियें। अन्त में उन्होने जोर देकर यह भी कहा कि ''चीफ ऑफ दी स्टाफ के पद के लिए देश के भूगोल तथा स्थानीय भूगोल का ज्ञान आवश्यक है।''

आज के मिसाइल युग में घनी जनसंख्या वाले देशों को तब तक पराजित करना संभव नही होगा, जब तक उनमें राजनैतिक एकता एवं शक्ति होगी। प्रलयकारी एवं महाकाल समझे जाने वाले आणुविक अस्त्र–शस्त्रों के युग में क्षेत्रीय विस्तार का महत्व और भी बढ़ गया है। आणुविक आक्रमण का सामना द्वितीय प्रहारक क्षमता (Second Strike Capability) का होना आवश्यक है, क्षेत्रीय विस्तार के अभाव वाले राष्ट्रों को आणुविक युग ने इस दृष्टि से सीमित कर दिया है। पश्चिम जर्मनी, जापान, फ्रांस, ब्रिटैन या इजराइल आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली हो सकते हैं। किन्तु वे अपने छोटे आकार एवं रक्षा में गहनता के अभाव के कारण राजनीतिक दृष्टि से महाशक्ति नहीं बन सकते हैं।[3]

उपर्युक्त सभी तथ्यों का विश्लेषण करने के उपरान्त गढ़वाल की भू–स्त्रातेजिक अवस्थिती का अध्ययन सुगमता की दृष्टि से निम्नवत् किया गया है :–

1- गढ़वाल नाम की उत्पत्ति।

2- गढ़वाल की स्त्रातेजिक अवस्थिति।

3- गढ़वाल का धरातल एवं प्राकृतिक बनावट।

4- गढ़वाल की जनसंख्या।

5- गढ़वाल की जलवायु।

6- सुरक्षा की दृष्टि से गढ़वाल की स्थिति।

1. गढ़वाल नाम की उत्पतिः–

खण्डाः पच्च हिमालयस्थ कथिता नैपाल कूर्माचलौ।

केदारोथ लघुरोथ रुचिरः कश्मीर संज्ञोन्तिमः।

अर्थात पहला खण्ड नैपाल प्रदेश दूसरा खण्ड कूर्माचल (कुमायूं) तीसरा खण्ड केदारखण्ड (गढ़वाल) चौथा खण्ड जालंधर (पंजाब का पर्वतीय भाग) और पांचवा खण्ड कश्मीर है।

इन पांच खण्डों में से केदारखण्ड अब गढ़वाल के नाम से विख्यात है। और पुराणों में इस देश का नाम हिमालय प्रदेश या केदारखण्ड के नाम से पाया जाता है। इस का सिलसिला हरिद्वार से प्रारम्भ होता है।

गढ़वाल शब्द योगरुढ़ी है, अर्थात 'गढ़वाल' वाला इसमें प्रत्यय है। जिसमें गढ़वाल शब्द यौगिक हुआ है। 'गढ़' शब्द उन पहाड़ी किलों का द्योतक है जो किलें पर्वतों की चट्टानों पर अधिकता से पाये जाते है। किले पूर्व काल में छोटे–छोटे ठाकुरी राजाओं, सरदारों के राज्य विभागों के नाम भी पृथक–पृथक थे, जो अब परगना और पट्टियों के नाम से विख्यात हैं। जब पंवार वंशज महाराजा अजयपाल ने सब ठाकुरी राजाओं और सरदारों को जीतकर उनके राज्यों को एक साथ मिलकर सुविस्तृत राज्य स्थापित किया, तब इस प्रदेश का नाम अधिक गढ़ होने के कारण गढ़वाल रखा, गढ़वाल का नामकरण सन् 1500 से 1515 के बीच हुआ।[4]

जनश्रुति के अनुसार :– गढ़वाल में 52 गढ़ थे, गढ़ो की अधिकता के कारण इस क्षेत्र को गढ़वाल कहा गया, उत्तराँचल में क्षेत्रों के नाम ताल, कोट, हाट, घाट आदि के आधार पर पड़े हैं कुछ लोग इस कारण से इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भारत के पहाड़ी गणराज्यों में गणेश्वर रहा होगा,

गढ़वाल के साहित्यकार मौलाराम रचित ग्रन्थों में भी गढ़राज्य व गणराज्य का उल्लेख है।[5]

मेरी राय में :– ''15 वीं शताब्दी में जब पंवार वंशीय पराक्रमी नरेश अजयपाल ने समस्त 52 गढ़ो को हस्तगत कर एक सुविस्तृत राज्य की स्थापना की तो अत्याधिक गढ़ होने के कारण इस को गढ़वाल कहा जाने लगा''।

2. गढ़वाल की स्त्रातेजिक अवस्थिति (Strategic Location fo Garhwal) :– मध्य हिमालय में स्थित गढ़वाल प्राचीनकाल से केदारखण्ड, भूतेशागिरी, सपादलक्ष, खंसदेश आदि नाम से जाना जाता था। केदारखण्ड के अनुसार इस क्षेत्र (गढ़वाल) की सीमा पूर्व में बौद्धाचंल पर्वत (वर्तमान बधाण, ग्वालदम क्षेत्र), पश्चिम में तमसा नदी (टौंस पर्वत), दक्षिण में हरिद्वार, उत्तर में श्वेशान्त पर्वत हिमालय तक फैला है। इसकी लम्बाई केदारखण्ड के अनुसार 50 योजन (200 कोस), चौड़ाई 30 योजन (120 कोस) तक विस्तृत है।[6]

गढ़वाल 29^0 26′ उत्तरी अक्षांश से 31^0 28′ उत्तरी अक्षांश एवं 77^0 49′ पूर्वी देशान्तर से 80^0 60′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसके उत्तर में तिब्बत, दक्षिण में हरिद्वार, सहारनपुर, बिजनौर जिले, पूरब में कुमायूं तथा पश्चिम में टौंस (तमसा) नदी स्थित है। गढ़वाल मण्डल का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 30,090 वर्ग कि0मी0 है। वर्तमान में गढ़वाल में देहरादून, टिहरी, पौड़ी, उत्तरकाशी, चमोली तथा रुद्रप्रयाग जिले शामिल है।[7]

गढ़वाल का जनपदवार क्षेत्रफल		
क्र0 सं0	जनपद का नाम	क्षेत्रफल (वर्ग कि0मी0)
1	देहरादून	3,088
2	टिहरी	4,421
3	पौड़ी	5,440
4	उत्तरकाशी	8,016

5	चमोली	7,626
6	रुद्रप्रयाग	2,252

जनपद उत्तरकाशी तथा चमोली दोनों सामरिक महत्व के जिले हैं। जिनकी उत्तरी सीमा तिब्बत से मिलती है। इस उत्तरी सीमा की सुरक्षा के लिए आर्मी (गढ़वाल रायफल्स, थर्ड बार्डर स्काउट तथा आई0 टी0 बी0 पी0) तैनात की गई है। इसके अलावा गढ़वाल की सीमायें हमारे दो पड़ोसी राष्ट्रों से भी मिलती है। (1) चीन (2) नेपाल, इस लिए इसका विशेष सामरिक महत्व है।

3. गढ़वाल की धरातलीय व प्राकृतिक बनावट :– भौगोलिक तत्वों में धरातल एवं प्राकृतिक बनावट का महत्वपूर्ण स्थान है, इसके ज्ञान से ही किसी भी क्षेत्र के अनेक भागों के यातायात के मार्गो, विशिष्ट सैनिक केन्द्रो की वास्तविक स्थिति, उत्पादन एवं विकास के महत्वपूर्ण साधनों की जानकारी प्राप्तकर रक्षा नीति तथा विदेश नीति को राष्ट्रीय हितों के अनुरुप निर्धारित करने में सफलता मिलती है, सरदार के0 एम0 पणिक्कर के अनुसार '' राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाले भौगोलिक तत्वों का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है''। उन्होने और स्पष्ट करते हुये कहा कि ''सुरक्षा एवं विदेश नीति एक दूसरे से इस प्रकार अभिन्न रुप से जुड़े हुये है कि इसके लिए किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है''। जब प्राकृतिक रुकावटें किसी देश की सीमाओं पर होती हैं तो उस राष्ट्र की सैनिक शक्ति बढ़ाने में मदद मिलती है। जैसे– पिरीनीज पर्वतमाला स्पेन का रक्षक दुर्ग है। इंगलिश चैनल इंग्लैण्ड की तट रेखा का प्रहरी है तथा अटलांटिक व प्रशान्त महासागर से अमेरिका को प्राकृतिक सुरक्षा की सुविधा प्राप्त होती है।[8]

जहाँ तक गढ़वाल का सम्बन्ध है यह उत्तर–पश्चिम में हिमालय की गोद में स्थित है अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण यह पूरे भारतवर्ष में अपना एक अलग स्थान रखता है। फलस्वरुप यह देश की शक्ति एवं सामरिक गतिविधि को प्रभावित करता है। गढ़वाल हिमालय की भूतलीय आकृति एवं संरचना बहुत कठिन एवं विभिन्नता पूर्ण है, हिम–वायु एवं तेज बहती हुई जलधाराओं ने धरातल को

काट–छाँट कर संवारा है तो पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों ने तोड़ मरोड़ कर ऊबड़–खाबड़ तथा ऊँचा–नीचा बनाया है। ऊँची चोटियां, गहरी घाटियां, तेज बहने वाली नदियां तथा पथरीली भूमि आदि हिमालय की प्राकृतिक बनावट की विशेषतायें हैं।[9]

उद्रभाव एवं आकृतिक दृष्टि से गढ़वाल हिमालय को मुख्य रुप से निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः–

(1) प्रधान हिमालय–	(क) श्रेणियां
	(ख) घाटियां
(2) लघु हिमालय–	(क) श्रेणियां
	(ख) नदी–घाटियां
(3) शिवालिक श्रेणी–	(क) श्रेणियां
	(ख) दून

प्रधान हिमालयः– इसे महान हिमालय भी कहते है। इसके अन्तर्गत गढ़वाल के दो सीमान्त जिले चमोली, उत्तरकाशी सम्मिलित है। इस प्रदेश की उत्तरी सीमा तिब्बत के पठार तथा दक्षिण सीमा 300 मीटर की सर्मोच्य रेखा द्वारा निर्धारित की जाती है। यह प्रदेश पथरीला तथा कटा–फटा है। इसका अधिकांश भाग हिमाच्छादित रहता है।अतः यह प्रदेश प्राकृतिक दृष्टि से महत्वहीन है, इस प्रदेश में वृक्ष रेखा 3200 मीटर की सर्मोच्य रेखा निर्धारित करती है, किन्तु गंगोत्री क्षेत्र में वृक्ष रेखा की ऊँचाई 3600 मीटर तक है।

महान हिमालयों की ढ़ालों पर दस–ग्यारह हजार फीट की ऊँचाई तक बाँज, बुरांस, चीड़, देवदार आदि के वन हैं। इसके अतिरिक्त ग्यारह–बारह हजार फीट की ऊँचाई पर हिमायलय की अति सुन्दर बुग्यालों और पयारें मिलती है जो लगभग चौरस या ढ़लुवा हिम निर्मित बगड़ों पर फैली है। जबकि उनसे अधिक ऊँचाई पर हिम से जली हुई नग्न चट्टानें मिलती हैं।[10]

लघु हिमालयः– शिवालिक श्रेणी के उत्तर की ओर एक छोर से दूसरे छोर तक लघु हिमालय की शाखाएं फैली हैं। इसके अन्तर्गत गढ़वाल के दो जनपद टिहरी, पौड़ी सम्मिलित है। पश्चिम में हिंबल नदी, मध्य में लंगूरगाड़ और सिलगाड़ तथा पूर्व में पलाई और मन्दाल नामक नदियां इस प्रदेश में बहती है। जहाँ शिवालिक की उत्तरी शाखा लघु हिमालय की दक्षिणी शाखा के पास पहुँची हुई है। लघु हिमालय की दक्षिण शाखा गंगा जी के तट पर कोटा नामक स्थान से माला, बिजनी, गैंड होकर धारी तक पहुँचती हैं जहाँ उसकी ऊँचाई 500 फीट हो गई है। यहाँ से आगे यह शिवालिक को उत्तरी शाखा के लगभग समानान्तर जिले के पश्चिमी छोर से दक्षिण पूर्वी छोर तक चली गई है। यह कहीं भी 500 फीट से नीची नहीं है, तथा कई स्थान पर 800 फीट से भी अधिक ऊँची हो गयी हैं। यह शाखा नयार की उपत्यका तथा हिंवल, खोह, तलांई और मन्दाल की उपत्यकाओं के मध्य जलविभाजक है। इस श्रेणी पर 5000 फीट से अधिक ऊँचाई पर अभ्रक, ग्रेनाइट की शिलाएं मिलती है।[11]

यहाँ की पर्वत श्रृंखलायें हिमाच्छादित रहती है। किन्तु नदी–घाटियां गर्म रहती है। वन संसाधनों, आर्थिक क्रियाओं तथा मानव निवास की दृष्टि से यह क्षेत्र सबसे अधिक उपयुक्त है।

शिवालिक श्रेणियां :– यह श्रेणी लघु हिमालय के दक्षिण भाग में फैली है, इसे बाह्य हिमालय तथा पाद श्रेणी भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत देहरादून तथा पौड़ी का दक्षिण पर्वतीय भाग सम्मिलित है। शिवालिक श्रेणी तथा लघु हिमालय श्रेणी के मध्य चौड़ी विस्तृत घाटी फैली हुई है, इसे दून के नाम से जाना जाता है, जैसे– पातली दून, देहरादून आदि, इस पर्वतीय क्षेत्र की ऊंचाई 600 मीटर से 1500 मीटर तक है।

जन्सकर हिमालयः– महाहिमालय के पार एक और हिम श्रेणी है जो महाहिमालय से कुछ कम ऊँची है और भारत तथा तिब्बत के सीमान्त पर खड़ी है। इसकी औसत ऊँचाई 1800 फीट से अधिक है। इस श्रेणी से भारत की अनेक छोटी–बड़ी नदियां निकलती हैं।अलकनन्दा की सहायक सरस्वती का तथा भागीरथी की

सहायक ताड्गंगा का उद्गम इसी श्रेणी में है, इसके द्वारा निर्मित जल विभाजन को भारत एवं तिब्बत के बीच परम्परागत सीमा माना जाता है। इस श्रेणी की ढ़ालें अतिसुन्दर है। इसकी दक्षिण ढाल पर कामेट शिखर है इस हिमालय में अनेक गिरिद्वार हैं, जिनमें से माणा, नीति, चोर होती और दमजन आदि हैं, ये गिरिद्वार प्राचीनकाल से ही भारत और हूणदेश तिब्बत के बीच मनुष्यों के आवागमन, व्यापार, तीर्थयात्रा और सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं।[12]

4. गढ़वाल की जनसंख्या :– किसी भी राष्ट्र या क्षेत्र के आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में जनसंख्या अत्यधिक महत्वपूर्ण कारक है। मानवीय संसाधनों का मुख्य श्रोत ही जनसंख्या है। यदि किसी क्षेत्र में या राष्ट्र में पर्याप्त संसाधन हैं तो जनसंख्या वृद्वि लाभदायक भी होती है लेकिन कहीं संसाधन सीमित और जनसंख्या अधिक हो तो वहां जनसंख्या वृद्वि अभिशाप बन जाती है। सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य प्रकृति में स्वतः प्राप्त पारिस्थितिक सन्तुलन की एक अवस्था से दूसरी किन्तु उच्च अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करता है। उसका यह कर्म जनसंख्या वृद्धि एवं जीविका के साधन (आर्थिक विकास) के मध्य स्थापित होता है।

युद्ध की परिस्थति में जनसंख्या संसाधन का अहम महत्व होता है। यह राष्ट्र की शक्ति एवं सामरिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। फलतः विशाल जनसंख्या सुरक्षा की दृष्टि से उपयोगी तथा जनशक्ति की दृष्टि से सशक्त मानी जाती है।

गढ़वाल की मानवीय स्थितिः–

जनसंख्या 2001				जनसंख्या घनत्व कि0 मी0	
जिला	आबादी	पुरुष	स्त्री	1991	2000
चमोली	369198	183033	186165	43	48
देहरादून	1279083	675549	603534	332	414

पौड़ी	696851	331138	365713	124	129
रुद्रप्रयाग	227461	107425	120036	106	120
टिहरी	604608	294842	309766	128	148
उत्तरकाशी	294779	151599	142580	30	37
श्रोतः– उत्तरांचल सामान्य ज्ञान परिचय (उपकार) पृ0 10					

जनसंख्या घटना क्रम

जिला	जनसंख्या	जनसंख्या	2001 में क्रम	1991 में क्रम
चमोली	332	414	3	3
देहरदून	106	120	4	8
पौड़ी	128	148	9	6
रुद्रपयाग	124	129	10	7
टिहरी	43	48	12	12
उत्तरकाशी	30	37	13	13

श्रोतः उत्तरांचल सामान्य ज्ञान परिचय (उपकार) पृ0 11

5. गढ़वाल की जलवायुः– जलवायु भी एक प्रमुख कारक है जिसकी महत्ता को नजर अंदाज नही किया जा सकता है।

जलवायु का सामरिक कार्यवाही सैनिक एवं असैनिक के स्वास्थ्य तथा मनोबल पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। सोवियत संध पर तो जलवायु का सर्वोच्च प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। किसी क्षेत्र में सामरिक कार्यवाही की सफलता एवं असफलता दोनों में जलवायु का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

गढ़वाल की जलवायु का यहां सामरिक पर्यावरण निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। स्वस्थ, कद काठी में हष्ट–पुष्ट जवानों एवं सैनिक मानसिकता को जन्म देने में यहां की जलवायु उत्तम है। इसी कारण गढ़वाल सदैव से सैनिकों का

प्रमुख चयन केन्द्र रहा है।यह अंग्रेजो के समय में मार्शल–कौम के रुप में भी जाने जाते थे। इन्होने अनेक युद्धों में अपनी वीरता का भी लोहा मनवाया है।

सर्व विदित है कि गढ़वाल का सम्पूर्ण भाग पर्वतीय है। यहां की जलवायु धरातलीय बनावट के हिसाब से भिन्न–भिन्न है। इस प्रकार जलवायु की दृष्टि से मण्डल को चार भागों में बांटा जाता है–

1. समुद्रतल से 2500 फीट तक ऊंचाई वाले क्षेत्र जहां की जलवायु सामान्यतः गर्म पायी जाती है।
2. समुद्रतल से 2500 फीट तक की ऊंचाई वाले क्षेत्र जिनमें सामान्यतः सम शीतोषण जलवायु पायी जाती है।
3. समुद्रतल से 400 फीट से 7500 फीट तक की ऊंचाई वाले क्षेत्र जहां सामान्य तथा ठण्डी जलवायु पायी जाती है।
4. समुद्रतल से 7500 फीट से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र जहां की जलवायु सामान्य से अधिक ठण्डी रहती है।इस प्रकार कहा जा सकता है कि गढ़वाल की जलवायु की मुख्य विशेषता यहां की सैनिकों को चट्टानी शरीर एवं फौलादी मनोबल का उपहार प्रदान करती है। जिस कारण इसका कोई शान नही है।

6. सुरक्षा की दृष्टि से गढ़वाल की स्थितिः– गढ़वाल प्राकृतिक स्वरुपों एवं सीमाओं वाला क्षेत्र है। प्राकृतिक आकृतियों का गढ़वाल की सुरक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तर दिशा में स्थित विशाल हिमालय गढ़वाल को सुरक्षात्मक लाभ प्रदान करता है। हिमालय की श्रेणियां क्रमबद्व श्रृंखलाओं में तलवार की आकृति के भाँति मुड़ी हुई हैं। ऐसा माना जाता है कि से श्रेणियां अभेद्य हैं। हिमालय में स्थान स्थान पर स्थित दर्रो का सैनिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान है। गढ़वाल के उत्तर में स्थित चमोली जसमें माणा द्वार, मोती द्वार, लुंजुन ला (मोरु ला) मोढ़ी ला, शल ला तथा उत्तरकाशी में मुलिंग ला, सांग चोक ला, थाग ला दर्रे गढ़वाल का सम्बन्ध चीन से जोड़ते हैं।

प्रो0 अशोक कुमार सिंह लिखते है कि '' सन् 1962 के चीनी आक्रमण के पूर्व तक हिमालय पर्वत भारत का सिंह द्वार समझा जाता था। परन्तु चीनी आक्रमण के पश्चात् यह धारणा गलत साबित हुई। यद्यपि हम अपनी भौगोलिक स्थिति से पूर्णतः परिचित एवं समन्वय बनाए रखने की क्षमता के कारण आक्रमणकारी की तुलना में सदैव लाभदायत स्थिति में रहेगे किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि विज्ञान की प्रगति में युद्ध के ऐसे प्रलयकारी साधन उपस्थित कर दिये हैं कि आज कोई प्राकृतिक बाधा अभेद्य नही है। अतः हमें अपनी उत्तरी सीमाओं की सुरक्षा के प्रति सजक रहना है। क्योंकि चीन और पाकिस्तान से हमारे मतभेद आज भी बने हुये हैं। के0 एम0 पन्नीकर ने ठीक ही कहा है कि– ''भारत के लिये हिमालय जो दीर्घ पैमाने के आक्रमण की अवस्था में अभेद्य और इतनी विस्तृत सीमा की रक्षार्थ किसी भी कृत्रिम–व्यवस्था से बढ़कर है, को अभी भी सुरक्षा का अपरिहार्य अंग माना जा सकता है किन्तु कोई भी पर्वत श्रेणी हर प्रकार के आक्रमण का प्रतिकूल अवरोध नही हो सकती है''। चीन के साथ भारत की सीमा युद्ध तथा मतभेदों को देखते हुये जहां हिमालय की पर्वत मालाओं में फैले दर्रो का महत्व बढ़ा देती है वहीं सुरक्षा की दृष्टि से इस दिशा में सदैव सर्तक रहना आवश्यक हो गया है''।[13]

1.2 गढ़वाल का ऐतिहासिक विरासत

गढ़वाल का ऐतिहासिक विरासत क्रमवद्व रुप में उपलब्ध नही है। इस लिए इसके ऐतिहासिक एवं परम्परागत निर्धारण में पौराणिक कथाओं एवं प्रागैतिहासिक ग्रन्थों की सहायता लेना वाछंनीय प्रतीत होता है।

ज्ञातव्य है कि ईसवी पूर्व प्रायः चौथी सहसत्राब्दि से लेकर ई0 पू0 सातवीं शदी तक मध्य हिमालय के आद्य–इतिहास (Proto – History) का प्रधान स्रोत साहित्य है जो वेदों महाकाव्यों तथा सूत्रों एवं पुराणों में सुरक्षित है। ऋग्वैदिक काल में जिस ''सप्तसिन्धव'' एवं सरस्वती के काँठों में आर्यो एवं दासों में घोर युद्ध हुआ, जहाँ से भारत जनों का मध्यदेश की ओर सङ्क्रमण हुआ, अपने जिस अभीजन उत्तर कुरु एवं सरस्वती की स्मृति में उत्तर वैदिककालीन आर्यो ने दक्षिण कुरु एवं दक्षिण

सरस्वती की कल्पना की, वह प्रदेश मध्य हिमालय ही था। जिसे आज उत्तराखण्ड कहते है।[14] हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपनी पुस्तक गढ़वाल का इतिहास पृ0 सं0 149 पर लिखा है कि विश्व का व्यापक अटल नियम है कि सदैव कोई देश या जाति या समाज एक ही अवस्था में नही रह सकता, काल चक्र की गति की घटना से गढ़वाल और उसमें रहने वाली जातियां तथा शासन में फिर से परिवर्तन का समय आ–उपस्थित हआ।

यह कहा जाता है कि उत्तर हिमालय प्रदेश में खसिया जाति के अधिक बसने और प्रभुत्व प्राप्त हो जाने पर क्रमशः आबादी बढ़ती चली गई, हिमालय के निकटवर्ती परगनों में रहने वाली जातियां भी जो सुंगड़ और बुढेरों के नाम से प्रसिद्ध थी स्वयं भी गढ़वाल के निचले भाग में रहने वाले लोगो को लूट ले जाया करते थे, लुटेरों को दण्ड इस लिए नही मिलता था कि खसिया जाति के अनेक छोटे बड़े ठाकुरी राज्य स्थापित हो चुके थे, जो गढ़वाल में 52 गढ़ अब तक भी गिने जाते हैं।

इस प्रकार आपसी व्यवहार वृति की मात्रा बढ़ जाने से इनके बीच जातीय प्रेम की जंजीर की कड़िया ढीली होती–होती खिसकने लगी, फूट नीति का प्रसार आरम्भ हुआ और उस के प्रतिफल में राष्ट्र में अराजकता और शासकों में निर्बलता ही इस परर्वितन का कारण प्रतीत होती है, राजाओं की निर्बलता जो अन्याय और स्वार्थ परायणता से पैदा होती है प्रजा में अराजकता फैलाने का कारण बना देती है, और जब वह दोष प्रकट हो जाता है तब उस देश का किसी अन्य शक्ति के अधीन हो जाना स्वाभाविक बात है।

गढ़वाल राज्य में नहीं बल्कि नेपाल से कश्मीर तक इसी हिमालय के दक्षिण पश्चिम में सभी जगह पूर्व काल में न्यूनाधिक ठाकुरी राज्य बहुत पाये जाते थे जिनमें शिमला हिल स्टेटस् में अब भी अनेक छोटे–छोटे राज्य विद्यमान हैं जिनको ठकुराई राजा कहते है। नेपाल के राजा हरिसिंह ने बहुत से छोटे ठाकुरी राजाओं के राज्य लेकर एक राज्य स्थापित किया था उसकी तीन पीढ़ी तक राज्य रहने के पश्चात् मल्ल वंश में राज्य चला गया था मल्ल वंश के पश्चात् निवार वंश का

आधिपत्य रहा, तत्पश्चात् निवार वंश से भी गोरखावंश के प्रथम राजा प्रतापनारायण के हस्तगत हुआ।

कुमायूं के इतिहास से जानकारी मिली कि कुमायूं में भी कैत्यूरा, रजवार और चन्द जाति के वंश में कुमायूं का राज्य रहा, इनके अतिरिक्त और भी छोटे–छोटे ठाकुरी राजा रहे हों चन्द वंशी राजाओं के राज्य का अन्त राजा प्रद्युम्नशाह ने किया, प्रद्युम्नशाह से गोरखाओं ने राज्य लिया।

तारिख फरिस्ता की जिल्द पहली पृ0 18 में लिखा है कि फौरी नामक एक व्यक्ति जो प्रायः कुमायूं के राजाओं से मैत्री रखता था और प्रायः वही रहता था, उसने प्रथम कुमायूं के राजाओं को विजित किया, तत्पश्चात् कन्नौज के किले पर चढ़ाई करके कन्नौज राजा मल्लु या दल्लु को युद्ध करके कैद किया था, इससे भी पता लगता है कि कुमायूं में भी गढ़वाल नेपाल के समान अनेक छोटे–छोटे ठाकुरी राजा अवश्य थे।

फिर एक जगह लिखा है कि रामदेव राठौर शिवलिक पहाड़ के राजाओं को (यहां गढ़वाल के ठाकुरी राजाओं से मतलब होगा) अपना कर देने वाला बना कर, कुमायूं के राजा को जिस के वंश में दो सहस्त्र वर्ष से कुमायूं का राज्य चला था जा घेरा, बहुत युद्ध और रक्तपात के पश्चात् राजा ने हाथी घोड़े और सामान छोड़ कर पवर्तो में घुस कर अपनी रक्षा की, रामदेव ने राजा की लड़की भेंट में लेकर राज्य को छोड़ दिया और स्वयं नगरकोट के पहाड़ की और कूच किया।

पहाड़ी जाति के ठाकुरी राजाओं को जो गढ़वाल के 52 गढ़ों में राज्य करते थे अपनी राजनैतिक चातुरी, सदभाव, नेपाल के एक इतिहास में लिखा है कि सन् 1322 ई0 में सूर्यवंशी अयोध्या नरेश हरिसिंहदेव पर दिल्ली के मुसलमान सम्राट ने चढ़ाई की उसने अयोध्या से भाग कर मिथिला की राजधानी सिमरावा गढ़ में दल सहित आकर रक्षा पाई, 444 नेपाली सम्वत्, सन् 1324 ई0 में दिल्लीश्वर तुगलक सम्राट ने फिर इनको घेर लिया, सिमरावगढ़ से उन्होनें शत्रुओं से विषम युद्ध किया परन्तु अन्त में पराजित होकर भागे और नेपाल जाकर बसे, उस समय नेपाल में बर्म्म वशीय राजा लोग राज्य करते थे, राजा हरिसिंह देव ने देखा कि इन लोगों में

पहिला सा तेज नही हैं, तब नेपाल राज्य को अपने अधिकार में कर लिया, कहते है कि राजा हरिसिंह के राज्य में यवनों का उत्पात देख कर देवी तुलसी भवानी ने राजा को स्वप्न में यह आज्ञा दी थी कि तुम मुसलमानों के छुये हुए राज्य को छोड़कर नेपाल के ऊचे स्थान में जाकर अपना राज्य स्थापित करो, देवी की आज्ञानुसार राजा नेपाल में गया, उस काल वहां मात गांव के ठाकुरी राजा औ अधिवासी लोगो ने देवी की आज्ञा सुन कर नेपाल का राज्य हरिसिंह के हाथ में सौंप दिया, और प्रजा प्रेम से तथा प्रजा में असंतुष्टा विद्यमान रहने के कारण अपने वश में कर लिया, एक ही शताब्दि के अन्दर खसिया जाति का प्रभुत्व क्रमशः आर्य राजपूतों के हाथ में चला गया जो क्रमशः एक शताब्दी के अन्दर समय प्रति समय इस देश में आते गये और क्रमशः प्रभुत्व प्राप्त करते गये, अब वह समय था कि गढ़वाल के 52 गढ़ों में अधिकांश राजपूत राजा राज्य करते थे।

गढ़वाल के 52 गढ़ों के ठाकुरी राजाओं में डांडा, क्वारा और रामीगढ़ भी था, डांडा क्वारा राजा सुदर्शन शाह के लड़की के दहेज में विशार के राजा महेन्द्र सिंह को दिया था तब से वह भाग विशार राज्य में शामिल हो गया, रामीगढ़ गोरखाओं की अमल्दारी के पश्चात् गढ़वाल से पृथक हो गया, जो अब पंजाब शिमला प्रान्त में शामिल है। नव आक्रमणकारी राजपूतों ने अपनी राजधानियां भी उन्ही उतुगं चट्टानों की चोटियों पर बने हुये किलों में रखी जिनमें पहिले खसिया राजाओं की राजधानी थी।

ऐसे उतुगं चट्टानों चोटियों पर किले बनाकर रहने का मतलब केवल लुटेरे दलों से सुरक्षित रहने का था, ऐसे किले केवल राजाओं के ही नही बल्कि और दूसरे रईस, थोकदार, धनी लोगों के घर भी प्रायः ऐसे ही स्थानों पर बनते थे, इस पर भी धनी लोग धन को जमीन में दबा कर रखते थे, उधार का लेन देन भी गुप्त रुप से करते थे जिससे लोंगो में यह बात न फैलने पाये कि अमुख मनुष्य धनी है उनको तिब्बती, संगड, और बुढेरे लुटेरे के अतिरिक्त राज्य कर्मचारियों का भी भय रहता था।

कितनी ही जाति राजपूतों की उन राजाओं के वंश में नातेदारी होने से आ बसी, कितने ही राजपूत नवीं शताब्दी विक्रमी में तथा उसके पश्चात् नौकरी अथवा नातेदारी के विचार से पंवार वंशज राजाओं के समय में आ बसी थी व राजाओं की कृपा से जागीर, मुवाफी, जमीदारी मिलने से इसी क्षेत्र की रहने वाली हो चुकी, कुछ कुछ ठाकुरी राजा लोगों की सन्तान इस क्षेत्र में अच्छे राजपूतों में गिनी जाती है जो वास्तव में खसिया राजा आर्य राजपूत के आक्रमणों से बच रहे थे, और उनकी सन्तान अपने महत्व लिए हुए उत्तरोत्तर पंवार वंशज राजा अजयपाल के समय के प्रारम्भ तक रही थी।

इसी प्रकार इस क्षेत्र में आर्य ब्राह्मणों के आने का इतिहास है जो जातियां कुछ तो नौकरी के कारण और कुछ अपने यजमान राजपूतों के कारण जो उनके गुरु पुरोहित होंगे, आने पाये जाते है।

इस प्रकार गढ़वाल में प्राचीन खसिया जाति के महत्व का पतन और आर्यो का अभ्युदय हुआ था, यद्यपि यह पता नही चलता है कि आर्य राजपूतों के आक्रमण किस सम्वत् या शताब्दी में हुये थे, परन्तु अनुमान से यह सिद्व होता है कि इनके आक्रमण सातवीं या आठवीं शताब्दी में हुये होंगे, जब कि शंकारचार्य भारत वर्ष से बुद्वधर्म की नींव उखाड़ने में प्रवृत्त थे, जब कि उन्होनें इस देश से भी बुद्धर्धम को हटाकर ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी, और बद्रीनाथ, केदारनाथ के मन्दिरों का पुनः उद्वार किया था, तभी से देश के रहने वाले लोगों को इस पर्वतमयी भूमि में घुसने का साहस हुआ होगा।

गढ़वाल के 52 गढ़ों सूची

क्र0 सं0	गढ़ का नाम	किस परगने का है	किस जाति का	विवरण
1.	नागपुर गढ़	नागपुर	नाग जाति अथवा नाग वंश का	यहां नाग देवता का मन्दि है यहां का अन्तिम राजा भजन सिंह हुआ।
.2	कोल्ली गढ़	बछरास्यूं	बछवाणा बिष्ट का	
3.	रवाड़ गढ़	बद्रीनाथ के मार्ग	रावड़ी जाति का	

4.	फल्याणा गढ़	फल्दाकोट	फल्याणा जाति के ब्राह्मणों का	यह गढ़ किसी राजपूत जाति का था उस जाति के शमशेर सिंह ने इन ब्राह्मणों को दान दे दिया था।
5.	बाँगर गढ़	बांगर	नागवंशी राणा जाति का	इस जाति पर एक बार वहां की धिरवाणा खसिया जाति ने भी अधिकार जमाया था।
6.	कुईली गढ़	कुईली	सजवाण जाति का	इस गढ़ को जौरासी गढ़ भी कहते है।
7.	भरपूर गढ़	भरपूर	''	यहां का अन्तिम थोकदार गोविन्द सिंह हुआ।
8.	कुजणी गढ़	कुजराणी	''	यहां का अन्तिम थोकदार सुल्तान सिंह हुआ।
9.	सिल गढ़	सिलगढ़	''	यहां का अन्तिम राजा सबल सिंह हुआ।
10.	मुगरा गढ़	रवाईं	रावत जाति	अब यहां रौतेले रहते है।
11.	रैका गढ़	रैका	रमोला जाति	यहां का अन्तिम राजा जयचन्द था।
12.	मोल्या गढ़	रमोली	''	
13.	उप्पुगढ़	उदयपुर	चौहान	
14.	नाला गढ़	देहरादून		अब इसको नालागढ़ी कहते है।
15.	सांकरी गढ़	रवाईं	राणा	
16.	रामी गढ़	शिमला प्रान्त	राणा	
17.	बिराल्टा गढ़	जौनपुर	रावत जाति	इसका अन्तिम थोकदार भूप सिंह हुआ।
18.	चांदपुर गढ़	तैली चांदपुर	सुर्यवंशी राजा भानु प्रताप का	इसी गढ़ को पहले पंवार राजा कनकपाल के अपने हस्तगत किया था, इसकी पहिले कोई और जाति थी।
19.	चौण्डा गढ़	शीली चांदपुर	चौंडला जाति	चौंडालगढ़ में रहने से चौंडाल कहलाता था।
20.	तोप गढ़		तोपाल जाति	इस वंश में तुलसिंह प्रतापी राजा हुआ इसने तोप ढलवाई थी तब से तोपगढ़ और तोपाल जाति प्रसिद्ध हुई थी।
21.	राणी गढ़	राणीगढ़ पट्टी	खाति जाति का	यह गढ़ प्रथम एक राणी ने बनवाया था उसी के नाम से यह गढ़ और पट्टी प्रसिद्व है।

22.	श्रीगुरुगढ़	सलाण में	पडियार (परिहार) जाति का	यहां का अन्तिम राजा विनोद सिंह था।
23.	बधाण गढ़	बधाण में	बधाणी जाति का	यह गढ़ पिण्डर नदी के ऊपर है।
24.	लोहाबगढ़	लोहबा में	लेहबा नेगी	इसमें दिलेवरसिंह और प्रमोद सिंह बड़े प्रतापी हुए है।
25.	दशोली गढ़	दशोली में		इस गढ़ में मानवर नामक प्रतापी राजा हुआ।
26.	कण्डारी गढ़	नागपुर	कण्डारी जाति	इस गढ़ का अन्तिम राजा नरवीरसिंह हुआ जो पंवार वंशज राजा से पराजित होकर मन्दाकिनी नदी में डूब मरा था।
27.	घौना गढ़	इडवालस्यूं	घौन्याल जाति	
28.	रतन गढ़	कुजाणी में	धमादा जाति	यह ब्रह्मपुरी के ऊपर है।
29.	एरासूगढ़	श्रीनगर के ऊपर		
30.	इडिया गढ़	रवाईं बड़कोट	इडिया जाति	इस गढ़ को रुपचन्द नामक एक सरदार ने विध्वंश किया था।
31.	लंगूर गढ़	लंगूर पट्टी		यहां भैरव का प्रसिद्व मन्दिर है।
32.	बाग गढ़	गंगा सलाण	बागूडी नेगी	इसको बगाड़ी भी कहते है।
33.	गढ़कोट गढ़	मल्ला ढांगू	बगडवाल बिष्ट का	
34.	गडतांग गढ़	टकनौर	भोटिया जाति का	इसके वंश का कुछ पता नही है।
35.	बनगढ़ गढ़	बन गढ़		यह अलकनन्दा के दक्षिण तरफ है।
36.	भरदार गढ़	भरदार		यह अलकनन्दा के दक्षिण तरफ है।
37.	चौंदकोट गढ़	चौंदकोट	चौंदकोट जाति का	
38.	नयाल गढ़	कटूलस्यूं	नयाल जाति का	इसका अन्तिमसरदार भग्गु हुआ।
39.	अजमीर गढ़	अजमीर पट्टी	पयाल जाति का	
40.	कांडा गढ़	रावतस्यूं	रावत जाति का	
41.	सावली गढ़	सावली खाटली		
42.	बदलपुर गढ़	बदलपुर	संगेला बिष्ट	

			जाति का	
43.	संगेला गढ़	नैल चामी में		
44.	गुजड़ गढ़	गुजडू		
45.	जौंट गढ़	जौनपुर		
46.	देवल गढ़	देवल गढ़		देवल राजा का बनाया हुआ है।
47.	लोद गढ़		लोदीजाति का	
48.	जौंलपुर गढ़			
49.	चम्पा गढ़			
50.	डोडरा क्वांरा गढ़			अब विशार राज्य में है।
51.	भुवना गढ़			
52.	लोदन गढ़			

इन 52 गढ़ों के अतिरिक्त और भी छोटे बड़े गढ़ अधिक तायदाद में पाये जाते है, जिनको कहा जाता है कि वे सरदार थोकदार और धनी लोगों के अधीन थे, ऐसे लोग भी उस काल की स्थिति के अनुकूल अपने प्राण और धन की रक्षा के लिए अपने घर ऐसे ही सुरक्षित स्थानों में बनाया करते थे।

इन बावन सरदारों की राज्य स्थिति के विषय में जो कुछ मालूम होता है वह इस प्रकार है कि यह सब 52 सरदार स्वतन्त्र राज्य करते थे, कोई किसी के अधीन नहीं था, इसी से उनके बीच प्रायः लड़ाई झगड़ों की छेड़ छाड़ बनी ही रहती थी।

(स्रोत :– गढ़वाल का इतिहास, पृ0 सं0 149 – 157)

इन प्राप्त तथ्यों के आधार पर ऐतिहासिक विरासत की दृष्टि से निम्नलिखित खण्ड़ों में किया जा सकता है। –

1. देवकालीन गढ़वाल :– देवकालीन व्यवस्था के आधार पर ज्ञात होता है कि उस काल में यहाँ राजतन्त्रात्मक प्रणाली थी। देवकालीन गढ़वाल को भी सुविधा की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जाता है–

(1) कैलास राज्य (2) अल्कापुरी राज्य (3) देवपुरी राज्य (4) हिमप्रान्त राज्य।

कैलास पर्वत से केदार क्षेत्र तक का प्रदेश कैलास राज्य के अन्तर्गत आता था। इस प्रदेश की महानता एवं पवित्रता के बाद इस सम्पूर्ण भू भाग का नाम केदारखण्ड पड़ा। इस क्षेत्र में गणतन्त्रात्मक प्रणाली थी। राज्य के सर्वोच्च अधिकारी राजा को गणेश की उपाधि से विभूषित किया गया था। शिव प्रथम राष्ट्रपति (राजा) थे। जबकि गढ़वाल को शिव का ससुराल तथा पार्वती का मायका बताया जाता है। शिव के पश्चात् उनके दूसरे पुत्र विनायक राजा बने जो सदैव अपने पद पर बने रहने के कारण गणेश कहलाये, शिव का राज्य अति उत्तम एवं शक्ति शाली था। इसी कारण आदित्यों के कई बन्धु इनके शिष्य बन गये, शिव भगवान को तन्त्रशास्त्र का आदिगुरु भी माना जाता है। नटराज होने के गन्धर्व, किन्नर आदि इनके अति समीप थे। गढ़वाल में आज भी गिरी, पुरी तथा भारतीय इत्यादि जातियां निवास करती है।[15]

अलकापुरी दूसरा शक्तिशाली राज्य था, बद्रीनाथ तथा अलकन्दा में मध्य का जो ब्रहमावर्त का भाग था, वह अलकापुरी के अन्तर्गत था, यहां मणिभद्र नामक यक्ष रहता था। जिसको अर्जुन ने युद्ध में पराजित किया था, पुराणों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अलकापुरी का राजा कुवेर था तथा देवपुरी तथा अलकापुरी का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध था, यह राज्य धन धान्य से परिपूर्ण था।

देवपुरी तीसरा राज्य था, जिसका क्षेत्रफल कैलाश मानसरोवर के द0 प्र0 और अलकापुरी राज्य के उत्तरी भाग में विस्तृत था, देवपुरी के निवासी देव, गन्धर्व तथा किन्नर थे, देवपुरी राज्य प्रत्येक प्रकार से समुन्नत था, इस राज्य के शासक इन्द्र थे, हिमप्रान्त चौथा राज्य था, जो अलकापुरी राज्य की सीमा के द0प्र0 में फैला था, इस राज्य का राजा हिमालय था। हिमालय नाम के राजा के पुत्र मौनाक से राजा इन्द्र का युद्ध तथा विजय श्री प्राप्त की।

2. रामायणकालीन गढ़वालः– रामायण काल में गढ़वाल में कौल–किरात, भील तथा अनार्य जातियों का अधिक प्रभाव था, उस समय गढ़वाल की राजनीतिक स्थिति क्या रही होगी इस सम्बन्ध में इतिहास व साहित्य दोनो मोन हैं, लेकिन विश्वास किया जाता है कि उस समय भी यहां राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली रही होगी, क्यों

कि उसके बाद का साहित्य राजतन्त्रात्मक प्रवृति की तरफ संकेत करता है। यह भी निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि इस समय के गढ़वाली राजाओं के अयोध्या नरेश के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे होगें, क्योकि अयोध्या नेरश रामचन्द्र जी ने अपनी बनवास अवधि का कुछ समय यही व्यतीत किया था। इस क्षेत्र में श्री राम का अधिक सम्बन्ध था, योग विशिष्ठ से विदित होता है कि श्री राम ने बद्रीनाथ तथा केदारनाथ की यात्रा की थी, रामायण काल में भी गढ़वाल का विशिष्ठ स्थान रहा है। गढ़वाल में कई सूर्यवंशीयों का राज्य रहा है, अग्नि पुराण के अनुसार रामचन्द्र जी ने मन्दाकिनी नदी (चमोली) के तट पर अगस्त्यऋषि को दिव्यशस्त्र प्रदान किये थे, रामचन्द्र जी ने भगवान की उपासना देवप्रयाग (पौड़ी गढ़वाल) नामक स्थान पर भी की थी, आज यहां पर रघुनाथ जी का भव्य मन्दिर बना हुआ है।[16]

3. महाभारत कालीन गढ़वालः– महाभारत काल में तगंण, किरात तथा कुलिन्द जातियों का प्रभाव था, सुबाहू नामक राजा इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली था, इसकी राजधानी श्रीपुर (श्रीनगर गढ़वाल) थी, दूसरा शक्तिशाली राजा विराट था, इसकी राजधानी विराट गढ़ी थी, जो कि आज जौनपुर भावर के कालसी नामक स्थान के उत्तर दिशा में अवशेष रुप में उपलब्ध है, इसी राजा के राज्य में पाण्डवों ने अपनी गुप्तवाश की अवधि व्यतीत की थी, अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का विराट राजा की पुत्री उत्तरा से विवाह हुआ था।

पाण्डवों ने इस कुलिन्द देश को अपने आधिक्य में करने के उद्वेश्य से महाबाहु जनजय को सेना सहित भेजा था, अर्जुन के बिना कोई पराक्रम दिखाए बड़ी ही सरलता से इस कुलिन्द देश कालकूट (कालसी) देहरादून और अनार्व देश (तराई का भाग) के राजाओं को पराजित कर दिया था, इस प्रकार सम्पूर्ण गढ़वाल पांचाल देश (पाण्डवो का राज्य) का एक भाग रहा है। कुलिन्दों का राज्य एक गणराज्य था, महाभारत के युद्ध में कुलिन्द नरेशों (गढ़वाल, कुमायूं के सुबाहु भाग दत्त आदि) ने पाण्डवो का साथ दिया, कौरव पक्ष का क्रथ नामक राजा कुलिन्द नरेशो द्वारा युद्ध भूमि में मारा गया, इस क्षेत्र के अनेक आयुध, जीवी, मलेचछ, दरद,

तुषार, खान, तंगण, कम्बोज, माहकील, यवन, पारद, पैचाश, बर्वर आदि जातियां ने कौरव पक्ष की तरफ से पाण्डवों के विरुद्व महाभारत के युद्ध में भाग लिया।

यह निर्विवाद सत्य है कि पाण्डवों का अधिक समय गढ़वाल में ही व्यतीत हुआ, महाभारत संभव पर्व के अनुसार पाण्डव बद्रीनाथ के पास पाण्डुकेश्वर में पैदा हुए थे, द्रोपदी का जन्म भी गढ़वाल में हुआ था, वृद्वावस्था में परीक्षित को राज्य देकर केदारनाथ मन्दिर के ऊपर स्वर्गारोहिणी पर्वत पर अपना शरीर इन्होनें छोड़ दिया था, स्कनध पुराण केदारखण्ड के अनुसार बाड़ाहाट ही पर्वावर्त स्थान है। जहां पर लाख का मकान बनाया गया, महाभारत में वर्णित है कि किरात रुपी शिव का अर्जुन के साथ विल्वकेदार (श्रीनगर) में युद्ध हुआ था, गढ़वाल में ऐसे कई मन्दिर हैं, जिन्हे पाण्डवों ने बनाया था।[17]

4. गढ़वाल पर बौद्ध प्रभावः– वैदिक समाज के रक्तपात मय यज्ञों के आडम्बर, कर्मकाण्ड की जटिलता जैसे दोषों के निराकर्णार्थ वेदिको–तरक में ''सार्वजनिक हिताय'' का मन्त्र लेकर आगे बडने वाला बोद्व धर्म ईसा के पूर्व की चार शताब्दी से लेकर ईसा के बाद छठी शताब्दी तक हिमालय प्रदेश में प्रचलित रहा।[3] महावंश के अनुसार बहुत से यक्ष, गन्धर्व तथा अन्य जातियों ने बौद्व धर्म को स्वीकार किया, गढ़वाल में यक्ष, गन्धर्व आदि जिन जातियों का बौद्व धर्म में प्रवेश हुआ वे सम्भवतः वहां के मूल निवासी होगें, जिनकी कोई देवीय सत्ता नही है।[18]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर तो यह निष्कर्ष निकलता है कि अशोक की जीवन काल में ही उत्तराखण्ड बौद्व धर्म के चिन्तन, मनन का केन्द्र बन गया था। ''गढ़वाल की उत्तरी सीमा अर्थात चमोली जिले के बधाण परगने में अनेक विहार मिलते है।''[19] बधाण बौद्धायन का ही अपभ्रश रुप प्रतीत होता है। सरल–सुबोध, तथा जनवादी धर्म होने के कारण गढ़वाल के लोगों का बौद्व धर्म से प्रभावित होना स्वाभाविक था, यही कारण है कि बौद्ध प्रभाव को यहां कई रुपों में व्याख्यायित किया गया है। वेद, धर्मशास्त्र, ब्राहमण, धर्म, में बन्ध्या एवं विधवा स्त्री को मिलने वाली उपेक्षा एवं मंहेवा के स्थान पर स्त्री के लिए पुरुषों की जननि नाम पवित्र माना गया है। पीले रंग के वस्त्रों को धारण करके भिक्षातन द्वारा जीवन निर्वाह

करने वाली मठो तथा शिवालयों में रहने वाली जोगिण बौद्ध भिक्षाओं से किसी भी प्रकार कम प्रतीत नहीं होती है। मन्दिरों में राम–कृष्ण की मूर्तियों के रुप में भी पूजा बौद्ध अनुकरणीयता का ही प्रभाव है।[20]

शंकराचार्य ने बद्री केदार के प्राचीन मन्दिरों से बौद्धो को भगाकर शैवधर्म की ध्वजा फहराई थी, बद्रीनाथ की मूर्ति सम्भवतः बुद्ध मुर्ति ही रही होगी, माणा में मार्छिया (भोटिया) लोग उसे भोटिया देवता बुद्ध कहकर पुकारते है। मौलाराम ने भी इसे बुद्ध मुर्ति कहा था।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार शेष मत द्वारा बौद्ध प्रभावों को स्वीकारते हुए जिस पथ का उदय हुआ है, उसे गढ़वाल में ''नाथ पंथ'' के नाम से जाना जाता हैं गढ़वाल में शेष मत की प्रधानता के कारण गढ़वाल के नाथ (भैरव) के उपासक थे, गढ़वाल की जनता बौद्ध धर्म की दान धर्मिता, उपदेश से भी अत्यधिक प्रभावित हुई थी, सांची के स्तूप के अभिलेखों को यह विदित होता है कि मोर गिरी के पार्श्व में बसे कुछ ग्रामवासियों ने सांची पहुँचकर स्तूप निर्माण के लिए दान दिया था, अतः बौद्ध प्रभावों में बौद्ध धर्म से गढ़वाल की जनता सर्वाधिक प्रभावित तो हुई लेकिन राजनीतिक कारणों व गृह युद्ध के कारण आज बौद्व विहवल पूर्ण रुप से नष्ट हो गये हैं। यही कारण है कि गढ़वाल में बौद्ध साम्रगी का इतना प्रभाव है।

5. कत्यूरी शासन एवं गढ़वालः– आंठवी शदी में कार्तिकयपुर (वर्तमान जोशीमठ) को केन्द्र बनाकर जिस राज्य का उदय हुआ उसे गढ़वाल कुमायूं के इतिहास में कत्यूरी राजवंश के नाम से जाना जाता है। एटकिन्सन आदि विद्वानों में काबुल के कठोर शासकों तथा विवाल के राजवंशो का उल्लेख करते हुए तथा इन वंशो के संस्थापक बासुदेव व कत्यूरी वंश के संस्थापक वासुदेव के नाम के आधार पर यह स्वीकार किया गया कि कठोर आयुध जीवियों ने हिमालय की ढालों पर अनेक छोटे–बड़े राजवंशो की स्थापना की थी। किन्तु कठोर तथा कत्यूर की प्रतीत होती हुई समानता केवल शक साभ्य पर आधारित होती है, जैसे कि ओकले ने स्वीकार किया है कि '' कत्यूरी राजवंश का नामकरण संभवतः उस नगर की कीर्तिकेयपुर के कारण (वर्तमान जोशीमठ) हुआ होगा, जहां उनकी राजधानी थी।[21] स्थान के नाम

के आधार पर ही उन्हे कत्यूर कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। वीरदेव कत्यूरी वंश का अन्तिम शासक था। इतिहासकारों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि यह बहुत कठीन परिश्रमी तथा कठोर शासक था।

विद्वानों ने स्वीकार किया है कि शंकराचार्य कत्यूरी राज्य काल में उत्तराखण्ड में पहुंचे थे, संभवतः कत्यूरी नरेशों ने बद्रीकाश्रम के जीर्णोधार में शंकराचार्य की सहायता की थी, इस काल के मन्दिरों में नगर शिखा में परिर्वतन करके एक नई शिखा का निर्माण किया, जो कत्यूरी शिखा कहलाता है। उत्तरकाशी, केदारनाथ, गोपेश्वर, देवप्रयाग, देवलगढ़, बद्रीनाथ, रानीहाट आदि मंदिरों में भी यही कत्यूरी शिखा है। इस शासन काल में भी तीर्थ यात्रा प्रचलित थी, भारत के विभिन्न भागों में वैष्णव, शैव तथा अन्य मतानुयायी उत्तराखण्ड के तीर्थो की यात्रा किया करते थे। इनके राज्य काल में गढ़वाल में अनेक मन्दिरों की स्थापना की गई है जो कि इनकी ऐतिहासिक की द्योतक है, तथा यहां के मन्दिर कत्यूरी नरेशों के स्मारक स्वीकारे जाते है।

6. गुप्तकाल में गढ़वालः– समुद्र गुप्त ने अपनी प्रयाग प्रशस्ति में अपने राज्य के प्रयत्न अर्थात सीमान्त पर स्थित समतत नेपाल और कर्तृपुर के नृपतियों का उल्लेख किया है। जो इसके प्रचण्ड शासक को सब प्रकार के कर देकर आज्ञा मानकर तथा उसी सेवा में उपस्थित हो कर संतुष्ट करते थे।[22]

समुद्रगुप्त के राज्य के सीमान्त पर जिस कर्तूपुर का उल्लेख हुआ है, वस्तुतः उसकी पहिचान कार्तिकेयपुर (वर्तमान जोशीमठ) से की गई है। हर्षचरित, काव्यमीमांशा, आदि में जो समुद्रगुप्त के पुत्र रामगुप्त द्वारा शकपनि द्वारा उसकी पुत्री ध्रुवस्वामिनी को भगाने की घटना का उल्लेख मिलता है। वह घटना भी इसी कार्तिकेयपुर नामक स्थान पर घटित हुई थी। क्योंकि बाण भट्ट ने हर्षचरित्र में लिखा है कि ''नारी के वेश में छिपे हुए चन्द्रगुप्त ने दूसरे की कामना करने वाले शकपति को शत्रु के नगर में ही मार डाला। काव्य मीमांशा में कार्तिकेयपुर की नारियों के समुद्र के द्वारा इसी कार्य हेतु चन्द्रगुप्त की प्रशंसा का उल्लेख किया है।[23]

इसी प्रकार खशाधिपति के राज्य छीन लेने वाले विक्रमादित्य शिवधारण करने वाले चन्द्रगुप्त से उत्तराखण्ड पर गुप्त सम्राटों का अधिकार स्वीकारा जा सकता है। गंगा–यमुना के स्रोत प्रदेशों पर गुप्त नरेशों के अधिकार की पुष्टि उत्तराखण्ड में गुप्त कालीन कतिपय मन्दिरों के अवशेषों व मूर्तियों मे होती है। समुद्रगुप्त की व्याघ्रनिहिता मुद्राओं में देवी मकर पर खड़ी है। इससे विदित होता है कलाकार मुद्राओं पर पहले से आने वाली देवी की मूर्ति के स्थान पर गंगा जी की मूर्ति का निर्माण कर रहा था।

भारत के इतिहास में गुप्तयुग स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है वस्तुतः इनके शासन काल में भी गढ़वाल में कला–कौशल तथा साहित्य की विशेष उन्नति हुई, गुप्तकालीन मुर्ति काला अपनी विशेष महत्व रखती है, देवी–देवताओं के हाथो में उनकी शक्ति प्रदर्शित करने के लिए निश्चित् रुप से उनके आयुद्व भी दिखाए जाते है।[24]

इस प्रकार गुप्तकालीन मूर्तिकला भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में अपना विशिष्ठ स्थान रखती है, उत्तराखण्ड के कतिपय मंदिरों में गुप्तकालीन मूर्तियां है।

7. हर्षवर्धन एवं गढ़वालः– गढ़वाल हिमालय पर हर्षवर्धन अथवा वर्धन शासक का भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। प्रसिद्व चीनी पर्यटक ह्वेनसांग हर्षवर्धन के राज्य काल में मंदावर (बिजनौर) और मायापुर (हरिद्वार) होता हुआ हिमालय के पो–लि–हि–मा–चुलों अर्थात ब्रहमपुत्र राज्य में गया था, एटकिन्सन के द्वारा ब्रहमपुत्र जनपद की पहिचान गढ़वाल से की गई है। अपनी पहिचान की दृष्टि से उन्होने मार्कण्डेय पुराण का उद्वरण दिया है। जिसके अनुसार ब्रहमपुत्र जनपद यमुना तट पर वनराष्ट्र (कुमायूं) तथा सुवर्णभुमि (तिब्बत) मे द0 री0 कोर समुद्र से घिरा था।[25]

ब्रहमपुत्र का यह क्षेत्र हर्ष के अधीन था, जैसा कि हर्षचरित के इस कथन से स्पष्ट होता है कि यहां सम्राट ने पर्वतीय कन्या दुर्गा का पाणिग्रहण किया था।[26]

हर्षचरित के अनुसार हर्ष के काल में ब्रहमचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ या परिव्राजक तीन आश्रमों की स्थिति बनी हुई थी, उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा भी उन

दिनों प्रचलित थी, हर्ष के काल में गढ़वाल में अनेक मत, मतान्तरों पाशुवलशेष, कपालिक, भागवत चार्वाक, बौद्ध तथा जैन प्रमुख थे। ह्वेनसांग ने ब्रहमपुत्र में पांच बौद्व विहारों का अस्तित्व स्वीकारा है, किन्तु इन में रहने वाले बौद्ध भिक्षुकों की संख्या कम थी।[27]

8. पंवार वंश का शासन एवं गढ़वालः– गढ़वाल हिमालय का एकताबद्व करने वाले चन्द्रवंश के सदृश ही गोरखा आक्रमण से पूर्व बहुराजकता को हराकर कर सम्पूर्ण गढ़वाल के ब्रिट्रिश शासन के पश्चात् टिहरी राज्य पर शासन के पश्चात् टिहरी राज्य पर शासन करने वाले राजवंश को पवांर वंश के नाम से जाना जाता है।

मानोदय काव्य में इसे चंद्रवंश तथा वेद ने इसे चन्द्रवंशी सिद्ध करने का प्रयत्न किया, गढ़वाली जनता को चन्द्रवंशी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, गढ़वाली चन्द्रनरेशों के (तुलौंदा बद्रीनाथ) दर्शन हेतु श्रीनगर आती थी।[28]

हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार – अन्तिम दण्डीस्वामी रामकृष्ण की मृत्यु के बाद मन्दिर की पूजा, अर्चना के व्यवधान देख गढ़नरेशों ने नम्बूरी ब्राह्मण को छत्र चंवर और खिलहत देकर मन्दिर का रावल बनाया, तब से बद्रीनाथ की पूजा, अर्चना करने के लिए ब्राहमणों को नियुक्त करने की प्रथा प्रचलित की गई, पंवार बंशीराजा अजयपाल ने शिव के वरदान से शत्रु की सेना को पराजित करके राज्यहस्तगत किया था, अजयपाल की शिव पर अत्यधिक आस्था होने के कारण देवलगढ़ में सत्यनाथ, भैरव तथा गढ़नरेशों की देवी राज–राजेश्वरी के यन्त्र की स्थापना की थी। (स्रोत : गढ़वाल का इतिहास, पृ0 180)

देवदासी रहने की प्रथा का प्रचलन गढ़वाल के गढ़नरेशों के शासन काल से ही प्रारम्भ हुआ, यही कारण है कि तुंगनाथ, गोपेश्वर, बाडाहाट, कालीमठ, रणीहाट, आदि के मन्दिरों में देव दासियों की नियुक्ति की जाती थी, मूर्तिकारों तथा शिल्पकारों को गढ़नरेशों द्वारा ही आश्रय प्राप्त था, अन्ततः यही निष्कर्ष निकलता है कि पंवार वंशी राजाओं ने गढ़वाल की भूमि में धर्म, कर्म कार्य सम्बन्धी तथ्यों को जन्म दिया, इस काल में गढ़वाल में अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाने के लिए भी भूमिदान दी गई थी।

ज्ञातव्य है कि गढ़राजवंश के ऐतिहासिक नरेशों के नाम इस क्रम में अंकित है। अजयपाल, सहजपाल, बहादुर शाह, मान शाह, साम शाह, (दुलो) राम शाह, महीपती शाह, पृथ्वीपति शाह, मेदिनी शाह, फतेहपति शाह, दिलीप शाह और प्रदीप शाह। पहली राजवली कैप्टन हार्डविक को 1796 ई0 में राजा प्रद्युम्न शाह से प्राप्त हुई ।[29] दुसरी 1804 में मौलाराम ने गोरखाली सरदारों को सुनाई थी।[30] तीसरी एटकिन्सन को अल्मोड़ा के किसी पंडित से मिली थी, चौथी को विलियम्स ने अपने ग्रंथ मेक्वायर आफ देहरादून में प्रकाशित की गई थी, पांचवी गढ़वाल के सेटलगेट आफिसर वेकेट द्वारा संग्रहीत 1849 की सरकारी रिर्पोट के साथ प्रकाशित की गयी थी,[31] पहली राजावली को प्रद्युम्न शाह ने राजकीय अभिलेखागार में सुरक्षित अभिलेखों पर आधारित बताया था, उसके अनुसार 1796 ई0 से 6 मास पूर्व भोगदत्त नामक व्यक्ति ने राजवंश की स्थापना की थी, अजयपाल से लेकर भोगदत्त के 74वें वंशज प्रद्युम्न शाह से पूर्व तक हुए समस्त राजाओं की राज्यावधि के वर्ष उस राजावली में दिये गये है।[32]

गढ़ राजवंश की स्थापना का श्रेय भोगदत्त (मौना) भुवनपाल तथा कनकपाल को विभिन्न राजावलियों में दिया गया है 1796 में श्रीनगर पहुँचने वाले हार्डविक को राजा प्रद्युम्न शाह से विदित हुआ था कि साढ़े 3774 वर्ष पूर्व गढ़राज्य 22 परगनों में बँटा था, जिन पर स्वतंत्र ठाकुरो का अधिपत्य था, उन दिनों अहमदाबाद गुजरात का निवासी भोगदत्त अपने भ्राता सेजदत्त (सहजदत्त) के साथ अधिक लाभप्रद व्यवसाय की ढूँड में उस पर्वतीय प्रदेश में आया, जो आज श्रीनगर कहलाता है। भोगदत्त ने चांदपुर के राजा के अधीन नौकरी कर ली और शीध्र ही उसने सेना में महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय पद प्राप्त कर लिया। अनुश्रुति के अनुसार भोगदत्त को स्वप्न में एक जोगी दिखायी दिया जिसने उसे अपने स्वामी से चांदपुर का राज्य छीनने की तथा उसके पश्चात् आस–पास के राज्यों को जीतने की प्रेरणा दी फिर भोगदत्त ने चांदपुर राजा को अपदस्थ कर दिया और धीरे – धीरे अन्य ठकुराइयों को जीत कर समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया, भोगदत्त से 900 वर्ष पश्चात् पन्द्रहवा नरेश अजयपाल व जिसने अपनी राजधानी श्रीनगर में स्थापित की, भोगदत्त की चोहत्तरवी पीढ़ी में राजा प्रद्युमन शाह व अजयपाल, फतेशाह,

दुलेतशाह, प्रतीतशाह, ललितशाह, जयकृतशाह और प्रद्युमनशाह केवल यही सात नाम ऐतिहासिक नरेशो के नामों से मिलते जुलते है।[33]

1849 की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार गढराजवंश का संस्थापक कनक पाल था। जो 688 ई0 में गुजरात से गढ़राज्य में आया था और उसकी यही 699 ई0 में मृत्यु हुई थी, उसके सत्रहवें वंशज गणपति अन्नतपाल की राजधानी मलुबाकोट में इक्कीसवें वंशज गणपति विक्रम पाल की राजधानी अम्बुबाकोट में तथा चौबीसवें वंशज सोनपाल की राजधानी भिलड्. उपत्यका में थी।[34]

राजावली के अनुसार (1152 – 1159) सोनपाल शक्तिशाली नरेश था, उसका शासित प्रदेश गढ़राज्य के पश्चिमी भाग में था उके खुश गढ़पतियों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, एटकिन्सन के अनुसार धारानगर के राजकुमार का नाम कादिलपाल था, जिसे वैकेट की राजावली में सोनपाल के तुरन्त पश्चात् स्थान दिया गया है। कादिलपाल का वंशज अजयपाल गढ़वाल के अन्य भागों की विजय का प्रयत्न करने वाला पहला वयक्ति था जिसने आज के श्रीनगर को बसाया था। राजावली के इस लेख के अनुसार चांदपुर में पंवार राज्य की स्थापना 1159 ई0 के आस–पास हुई थी।[35]

चांदपुर गढ़ी के पास–पड़ोस के गांव में बसे नौटियाल ब्राहमणें में प्रचलित अनुश्रुति के अनुसार उनके पूर्वज धार मालवा से सं0 945 अर्थात 888 ई0 में राजकुमार कनकपाल के साथ राजगुरु के रुप में आयें थे और नौटी गांव में बसे थे, लेकिन यह अनुश्रुति वेकेट द्वारा मान्य राजावली से मेल नही खाती। अतः सोनपाल, कनकपाल, और भानुप्रताप की अनुश्रुतियां प्रचलित हुई जिनका उल्लेख 1917 ई0 में डा0 पातीराम ने तथा 1920 में हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने ग्रन्थो में किया है।

गढ़ नरेश फतेहशाह (1664 – 1716) ई0 शासनकाल में मतिराम, भूषण रतनकवि और कविराज सुखदेव मिश्रा आदि ने राजा की प्रशंसा में जो पद्य लिखे हैं उनमें से किसी में भी उसका सम्बन्ध पंवार वंश से नही जोड़ा गया है, यदि इन

कवियों को ऐसे सम्बन्धों का पता होता हो वे पंवार वंश या उसके प्रख्यात वीरों में से किसी न किसी की ओर अवश्य संकेत करते।[36]

सुखदर्शन (सुदर्शन) शाह गढ़राजवंश का पहला नरेश था जिसने 1828 ई0 में अपने वंश का नाम पंवार लिखा था, अतः इस वंश से सम्बन्धित मनोदय और रामायण प्रदीप काव्य के एवं रतूड़ी द्वारा एकत्रित श्लोको के आधार पर माना जा सकता है कि गढ़राजवंश चन्द्रवंशी क्षत्रियों का वंश है जिसे किसी अज्ञात कारणवश अठारहवीं शदी के अन्त से पंवार वंश कहा जाने लगा। महाभारत और पुराणों के अनुसार चन्द्रवंशी क्षत्रियों की मूलभूमि उत्तराखण्ड में गंगा जी की उपत्यका में थी।[37]

1958 में 'चातक' ने जगदेव पंवार का पांवड़ा प्रस्तुत किया जिसके अनुसार धारानगरी के जगदेव पंवार ने अपना सिर काटकर काली को अर्पित किया था और काली ने प्रसन्न होकर उसे गढ़वाल का राज्य दिया था इसी पंवाड़े का अंग्रेजी अनुवाद 1935 में पंडित लारादत्त गैरोला ने प्रकाशित किया था, उसमें जगदेव को गढ़वाल राज्य दिये जाने की कोई चर्चा नही है। जगदेव परमार के नाम से एक ग्रंथ 1912 में बम्बई से प्रकाशित हुआ उसमें जगदेव पंवार की गाथा है। उसको गढ़वाल का राज्य दिये जाने का जरा भी जिक्र नही हुआ है।[38]

अब तक ज्ञात तथ्यों के अनुसार केदारभूमि में चन्द्रराजवंश का जिसे 18वीं शदी के अन्तिम वर्षो में पंवार वंश बताये जाने लगा। आरम्भ 15वीं शदी के पूर्वार्द्ध में हुआ, 1441 ई0 के आस–पास से देवप्रयाग राठ चांठ राज्य पर शासन करने वाले जगतपाल को इस वंश का प्रथम राजा माना जा सकता है, उसके द्वारा अपनाया गया 'रजवार' अन्तिम गढ़नरेश प्रद्युम्नशाह के राज्यकाल तक बना रहा, उसने गढ़वाली भाषा में अभिलेख अंकित करने की जो परम्परा आरम्भ की थी, वह अन्तिम गढ़नरेश के शासन तक बनी रही।[39]

अतः स्पष्ट है कि चन्द्रवंशीराज चलते–चलते अचानक 18वीं शदी में पंवार वंश का आगमन या प्रचलन किसी आकस्मिक परिवर्तन या पंवार वंश के किसी व्यक्ति का शासन में समानता के अस्तित्व को इंगित करता है।

वेकेट की सूची के अनुसार जगतपाल (1441–1500), उसके पुत्र जीतपाल तथा पौत्र आनन्दपाल ने मिलकर 59 वर्षो तक राज्य किया। रतूड़ी के अनुसार आनन्दपाल के पुत्र अजेयपाल को 1500 ई0 में सिंहासन मिला। जगत/जगती पाल के देवप्रयाग अभिलेख की तिथि सं0 15/12/1455 ई0 है। जिससे अनुमान लगता है कि 1399 ई0 में तैमूर से भिड़ने वाले राजा बछराज और उनके वंशजों का शासन 1441 के आस–पास समान्तर हो गया था, गढ़राजवंश में चन्द्रराजवंश संस्थापक जगतपाल ही था।[40]

अजयपाल (अजय) (1500–48 ई0) के पुत्र सहजपाल के देवप्रयाग– अभिलेख की तिथि सं0 1605 / 1548 ई0 है, अतः अजयपाल की अन्तिम तिथि 1548 या इससे पूर्व होनी चाहिए। 1920 में हरिकृष्ण रतूड़ी ने लिखा– 1500 ई0 में अजयपाल के सिंहासन पर बैठते ही चम्पावत के राजा किरातीचन्द्र ने गढ़राज्य के सीमान्त बधाण पर आक्रमण किया, जिसमें अजयपाल को हारकर भागना पड़ा, सत्यनाथ द्वारा प्रोत्साहित होने पर चम्पावत नरेश को पराजित कर उसका पीछा किया।[41]

सहजपाल (1548 – 80) तक शासन किया, उसके भ्राता बलरामसाह का जिसने सहजपाल के पुत्र मानसाह के संरक्षक के रुप में शासन किया था। जिसकी पुष्टि 1580 के मिले अभिलेख से होती है।[42] सहजपाल के शासन काल में उसके मुगल साम्राज्य से सहयोग और सद्भावनापूण सम्बन्ध थे। अकबर जैसे परम प्रतापी सम्राट के राज्य की उत्तरी सीमा पर श्रीनगर के छोटे से पर्वतीय पश्चिमी तिब्बत के नरेश ने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी, और पुत्री का डोला अकबर के पुत्र जहांगीर के लिए भेजा था।[43]

मानोदयकाव्य में मानशाह (1580–91) को सहजपाल का पुत्र कहा गया, अस्तु मानशाह जिसने अभिलखों के अनुसार बलरामशाह के पश्चात शासन किया, बलराम शाह का पुत्र नही था, मानोदय में अजयपाल को बलः प्रिय कहा गया है।

वेकेट के अनुसार मानशाह ने (1591–1611) तक शासन किया था, पौड़ी में एक मन्दिर के शिलालेख के अनुसार मानशाह को अपने राज्याभिषेक के प्रथम वर्ष

के पूर्व होने के उत्सव के अवसर पर 19 गते माघ सं0 1649/31 जन 1592 के दिन उस मन्दिर को भूमि दी थी।[44]

श्यामशाह (1611–25) तक शासन किया, श्यामशाह के उत्तराधिकारी महीपति साह का नाम केशोरायमठ श्रीनगर के 1625 ई0 के लेख में मिलता है। श्यामशाह की मृत्यु 29 जुलाई 1631 के दिन हुई, मानशाह के उत्तराधिकारी श्यामशाह से लेकर अन्तिम नरेश प्रद्युम्नशाह तक के राज्यकाल की सूचनाएं मौलाराम के ''गढ़राजवंश काव्य'' में मिलती है। अब तक की सारी उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण पादरी मैक्लागन ने अपने ग्रंथ ' जेसुएट्स एण्ड दि ग्रेट मुगलस ' में किया है। जेसुएट स्रोतों से विदित होता है कि छपराड्. गूगे पर श्यामशाह का निष्फल आक्रमण अक्टूबर 1624 में हुआ, जिसके कारण तिब्बत के लौटते समय ऐन्द्रादे को कुछ दिन तक माणा ग्राम में रहना पड़ा।[45]

महीपतिशाह (1625–31–35) श्याम शाह के प्रमुख सहायक के रुप में शासन करने लगा था। 1631 में श्यामशाह की मृत्यु हो जाने पर वह उसके अवोध पुत्र दुलाराम शाह के संरक्षक के रुप में शासन करने लगा, रतूड़ी के अनुसार महीपति श्यामशाह का चाचा था।

एटकिन्सन ने इस राजा का नाम गढ़भंजन महीपतिशाह लिखा है। मौलाराम के अनुसार वह महाप्रचंड, भुजदंड वाला और अत्यन्त तामसी था उसने अपने शत्रुओं तथा कई मंत्रियों का संहार कर दिया था, उसका एक सेनानायक बदलपुर का लोदी रिखोला था, तथा दूसरा मलेथा गाँव का माधोसिंह भण्डारी, तीसरा सेनानायक मौलाराम का पूर्वज बनवाड़ी दास केवर था। देवप्रयाग में रघुनाथ मन्दिर के 1664 ई0 के रजतपत्र लेख में माधोसिंह भण्डारी के पुत्र गजे सिंह का, उसकी पत्नी मधुरा बोराजी का तथा पौत्र अमर सिंह भण्डारी का उल्लेख मिलता है।[46]

कर्णावती (1635–40) महीपतिशाह की मृत्यु के समय उसके पुत्र पृथ्वीपतिशाह की उम्र लगभग 10–11 साल थी, पृथ्वीपति की मां कर्णावती ने जो इतिहास में नाककटी रानी से प्रसिद्व है, लगभग 5 वर्ष तक अपने पुत्र पृथ्वीपतिशाह की संरक्षिका के रुप में शासन किया, मुस्लिम गाथालेखकों के अनुसार वह

महीपतिशाह के समान ही प्रचन्ड शक्तिशाली थी, जेसुएट्स ग्रंथों से विदित है कि 1640 ई0 में गढ़नरेश पृथ्वी सिंह के हस्तक्षेप से पादरी मालविक तथा दो अन्य पादरियों को छपराड़ के कारागार से मुक्ति मिली थी।[47]

पृथ्वीपतिशाह (1640–64) ने 1640 में शासन भार संभाला। 1660 में कुछ समय के लिए उसके पुत्र मेदिनीशाह ने शासन अपने हाथ में ले लिया। 1664 ई0 में पृथ्वीपतिशाह ने मेदिनीशाह के पुत्र फतेहपतिशाह को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। 1668 ई0 में उसकी मृत्यु हुई, शाहजहां के राज्यकाल में लोगो की पक्की धारणा थी कि गढ़वाल के निवासी दैत्यों और राक्षसों के वंशज है।[48] पुनः पृथ्वीपतिशाह को राज्य–व्यवस्था अपने हाथ में लेनी पड़ी, 'आलमगिरीनामा' से विदित होता है कि औरंगजेब के राज्य के पूवार्द्ध में (1660–78) की अवधि में मेदिनीशाह के अतिरिक्त श्रीनगर राज्य के जमींदार भीमसिंह और प्रेमसिंह भी मनसवदार थे।[49]

अभिलेख और औरंगजेब के फरमान के आधार पर फतेहपतिशाह की राज्यावधि 1664 से 1716 ई0 है। फतेहसाहकरण नामक ग्रंथ ज्योतिषग्रंथ के अनुसार जटाधर मिश्र द्वारा रचित फतेहपतिशाह का जन्म शाके 15781 सन् 1650 ई0 में हुआ था, सिंहासन प्राप्ती के समय उसकी आयु केवल 8 वर्ष थी, फतेहपतिशाह की गुरुजी के प्रति विशेष श्रद्वा थी, गुरुजी श्रीनगर में रहते थे। 1686 के आस–पास जब गुरु गोविन्द सिंह पांवटा में अपना दुर्ग बना रहे थे दोनों गुरुओं के मध्य किसी स्थान पर सद्भावना पूर्ण भेंट हुई थी, गुरु रमाराय की प्रेरणा से फतेहपतिशाह ने भी पांवटा में गुरु गोवन्दि सिंह से भेंट की थी।[50]

इस तथ्य से उजागर होता है कि बद्रीनाथ स्थित हेमकुँड़ गुरुद्वारा इसी चरण में सम्मिलित रहा होगा जो 17 वीं शताब्दी के आस–पास अपने अस्तित्व में आया होगा।

उपेन्द्रशाह (1716), दिलीपशाह (1716–17), फतेहशाह का अन्तिम अभिलेख 1716 ई0 को मिला है, उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी, उसक शाके 1628/1706 ई0 के देवप्रयाग ताम्रपत्र के अनुसार उसके दो पुत्र थे, फतेहशाह के बाद उपेन्द्रशाह

नो–दस माह राज्य करने के बाद स्वर्गवासी हो गया, उसका कोई टीका (राजकुमार) नही था, जो पुत्र पैदा हुए कोई नही बचे, छोटे भाई दिलीपशाह की भी मृत्यु होने पर उसका पुत्र प्रदीप सिंहासन पर बैठा। 1808 में श्रीनगर पहुँचने वाले रेपर ने लिखा था उपेन्द्रशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके भ्राता दुर्लभाशाह (दिलीपशाह) के पुत्र प्रताप साही (प्रदीपशाह) को सिंहासन मिला।[51]

एटकिन्सन ने प्रदीपशाह के अभिलेखों को 1717 से 1772 तक बताया है। मौलाराम के अनुसार प्रदीपशाह को 5 वर्ष की आयु में सिंहासन प्राप्त हुआ था, उसके राज्यकाल के आरंभिक 10–12 वर्ष तक उसकी माँ शासन करती रही, फतेहशाह के समय मे हिमांचली राजाओं के साथ गढ़नरेशों के सम्बन्ध बढ़ने लगे, फतेहशाह की 22 रानियों में से गढ़वाली मूल की केवल 4 (2 झिंक्वाणी, 2 बर्त्वाली) व हिमांचल मूल की 18 रानियां थी।[52]

प्रदीपशाह के अभिलेख 1777 के पश्चात् नही मिलते, ललितशाह के आदेशपत्र 1773, 74, 75, 77, 79 के मिले है। उसके उत्तराधिकारी जयकृतशाह के अभिलेख 1780 से मिलने लगते है, अस्तु ललितशाह की राज्यावधि 1772 से 1780 ई0 तक मानी जाती है। भक्तदर्शन के अनुसार उसने 24 गते मंगसीर सं0 1829 से 28 गते श्रावण सं0 1837/15 दिसम्बर 1772 से 13 अगस्त 1780 तक शासन किया।[53]

ललितशाह का अन्तिम अभिलेख 1780 ई0 को प्राप्त हुआ है, प्रद्युम्न के कुँमाऊँ में 1781 – 86 तक मानी जाती है। इनमें तथा अन्य साक्ष्यों से जयकृतशाह की राज्याविधि 1780 –86 तक मानी जाती है, मौलाराम ने प्रदीपशाह के राज्यारंभ में राजमाता के 'रानीराज' के प्रसंग में लिखा है कि– जब तक डोबाल दफ्तरी बना रहा, गढ़राज्य के कार्य सुचारु रुप से चलते रहे ज्योंही दफ्तरी पद खण्डूड़ी को मिला, उसने पुराने जनहित के कार्य बंद कर दिये, डोबाल द्वारा दी गयी जागीरों और रोजीना (दैनिक वृत्तियां) बन्द करवा दी, उसने मठ, मन्दिर, उधान आदि की स्थापना नही की, जो पहले बने थे उसे भी नष्ट कर दिया।[54]

प्रद्युम्नशाह ने 1786 से 1804 ई0 तक शासन किया, जयकृतशाह की मृत्यु और उसकी सम्पति की लूट के पश्चात् गढ़मंत्रियों ने कुँमाऊँ सूचना भेजी, सूचना पाते ही प्रद्युम्न और पराक्रम दोनों हर्ष देव जोशी के साथ श्रीनगर पहुँचे, वाल्टन के अनुसार जयकृतशाह की मृत्यु के समय पराक्रम श्रीनगर में था, और उसने अपने को गढ़नरेश घोषित कर दिया था किन्तु प्रत्यक्षदर्शी मौलाराम के अनुसार उन दिनों प्रद्युम्न और पराक्रम दोनों अल्मोड़ा में थे।[55]

1788 के दिस0 में जब प्रद्युम्न, हर्षदेव, शिवचन्द्र तथा पराक्रम की सेना लालसिंह तथा महेन्द्र सिंह की सहायता हेतु कुमांऊँ में थी, प्राकृतिक दृश्यावली के चित्रकार डेनियल अपने भतीजे विलियम डेनियल और अंग्रेज सेन्याधिकारी कर्नल हौर्टर्न व्रिस्को, तथा जनरल जांन कारनाक के साथ गढ़राज्य भ्रमण पर निकले थे।

डेनियल ने लिखा है– मई 1789 में जब वह श्रीनगर में था गढ़वाल और कुमांऊँ के मध्य युद्ध चल रहा था युद्ध की परिस्थिति ने कारण श्रीनगर से आगे बढ़ना निरापदन था, इसलिए उसे अपने दल के साथ वापस लौटना पड़ा।[56]

नेपाल दरबार ने संवत् 1840 के माघ मास / जन0 1790 ई0 में काजी जगीजीत पांडे, सरदार अमरसिंह थापा, कप्तान गौलैया, कप्तान रणधीर खत्री, सुब्बा जोगनारायण मल्ल, सुब्बा फौंदसिंह तथा सुखबीर खत्री के नेतृत्व में गोरखाली सेनाओं को कुमांऊँ राज्य की विजय के लिए भेजा, एटकिन्स के अनुसार पांडे और अमरसिंह थापा के हाथ में था।[57]

नेपाल के इतिहास लेखक बालचन्द्र शर्मा के अनुसार – नेपाली सेना तुरन्त गढ़वाल के भीतर प्रविष्ट हो गयी। अलकनंदा के पार के निमित्त नेपालियों को तनिक भी युद्ध नही करना पड़ा। इसी दौरान गढ़वाल के राजा के विरूद्व युद्व चल ही रहा था कि इसी अवसर पर चीन द्वारा नेपाल पर आक्रमण किये जाने की सचना पाकर नेपाली सेना 1791 ई0 में गढ़वाल से संधि करके लौट गयी।[58]

नेपाल दिग्दर्शन नामक ग्रंथ के अनुसार जिस सेना को श्रीनगर पर अधिकार करने भेजा था उसका संचालन चौतरिया हस्त (हस्ती) दलशाह, काजी दलमुख सिंह, सरदार भक्ति थापा, काजी नरवीर वंसनेत और सरदार रणजीत कुंवर आदि

कर रहे थे, दूण (दून) युद्ध के समय अमरसिंह थापा को श्रीनगर में सूचना मिली कि गढ़नरेशों ने दून के कुछ भाग पर पुनः अधिकार कर लिया, गढ नरेश को मार भगाने के लिए अमरसिंह ने श्रीनगर से प्रस्थान किया, नेपाली स्रोतों के अनुसार गोरखाली दूण में तब तक अपने शिविर भी स्थापित नही कर पाये कि दूण पर प्रद्युम्न को छापा मारने की सुचना मिली, तुरन्त अमरसिंह थापा, काजी दलगुरू सिंह तथा सरदार रणधीर सिंह वस्नेत अपनी सेना लेकर वहां पहुँचे, उन्होनें गढ़नरेश तथा उसके द्वारा बटोरी गई सेना को मोहन घाटी के मार्ग से सहारनपुर की ओर खदेड़ दिया,[59] गोरखाली सेना के दूण पहुँचते ही उसने धामागढ़ी से नालापानी की ओर बढ़ने वाली गढ़नरेश सेना को दो ओर से घेर लिया, गुरु रामराय दरबार से लगभग आधा मील की दूरी पर खुड़बुड़ा के मैदान पर भीषण जंग हुई, प्रद्युम्न के दोनों भ्राता पराक्रम और प्रीतम तथा दोनों पुत्र सुदर्शन और देवसिंह रणस्थल में उपस्थित थे, प्रद्युम्न अपने प्राणों की चिन्ता क करके स्वयम् रणस्थल में सेना का उत्साह बढ़ा रहा था, शिविर के बाहर वह घोड़े पर सवार होकर पृथ्वीपुर के मियां दुलेत सिंह से परामर्श कर रहा था, कि रणजीत सिंह की गोली लगने से औंधे मुंह धरती पर गिर पड़ा, युद्ध की तिथि टिहरी राज्य अभि0 रजि0 के अनुसार 22 गते माघ, 5 फरवरी 1804 ई0 है, रेपर के अनुसार जनवरी 1804 है, जबकि रतूड़ी के अनुसार 14 मई 1804 है, प्ऱद्युम्न के दीवान मोनसिंह का एक पत्र जिस पर ''श्रीशप्रद्युम्न कृपया प्राप्त मंत्रित्वकारिणः युद्रा मोहनसिंस्य'' अंकित है, सं0 1861 के जे0 25 गते 8 जून 1804 ई0 को प्राप्त हुआ।[60]

प्रद्युम्नशाह की वीरगती के 18 वर्ष पश्चात् 1822 ई0 में गंगावार अर्थात् चमोली सहित पौड़ी गढ़वाल के जनपद के ग्रामों की सं0 3457 थी,[61] तथा प्रदीपशाह के शासनकाल में दूण में 400 गांव थे।[62]

इधर महाराजा प्रद्युम्न के पुत्र महारज सुदर्शनशाह ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से सहायता मांगी, ईस्ट इंडिया कम्पनी सहायता तथा गढ़वाली समाज के बढ़ते आक्रोश के कारण गोरखाओं के राज्य का अंत हो गया। कुमांऊँ का राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला दिया गया था। गढ़वाल पर सन् 1815 से महाराजा सुदर्शनशाह का पूर्ण अधिकार हो गया, तथा चमोली और पौड़ी ब्रिटिश गढ़वाल में मिला दिये गये,

ब्रिटिश गढ़वाल का हेडक्वार्टर 1840 ई0 में श्रीनगर से परगना बारहस्यूँ पट्टी नान्दलस्यूँ में पौड़ी के लिए स्थानान्तरित किया गया, महाराजा सुदर्शनसाह ने 1815 में अपनी राजधानी श्रीनगर में टिहरी बना ली तथा 45 वर्ष तक राज्य किया। इसके पश्चात् 6 दिसम्बर को 1869 को भवानीशाह गर्वमेंट से मिले और 12 वर्ष तक राज्य किया। महाराजा प्रतापशाह भवानी के बड़े बेटे थे, अब तक टिहरी में अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात हो चुका था। प्रतापशाह ने 15 वर्ष तक राज्य किया। इसके पश्चात् 19 जनवरी 1886 में कीर्तिशाह का राज्याभिषेक किया गया। 31 दिसम्बर सन् 1898 ई0 को सरकार ने इन्हें सी0 एस0 आई0 की उपाधि दी, इनके एकमात्र पुत्र महाराजा नरेन्द्रशाह को इसके बाद राज्यसत्ता प्राप्त हुई, इनका शासनकाल 1948 तक रहा, अन्तिम शासक मानवेन्द्रशाह रहे, इनके बाद गढ़वाल में देश के अन्य भागों की तरह पूर्णतः प्रजातंत्र की स्थापना हुई।[63]

उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि गढ़वाल हिमालय में प्रचलित काल से विभिन्न जातियों–प्रजातियों के आवागमन से निरन्तर क्षेत्रीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास शेष भारत के अन्य भू–भागों के समानान्तर होता रहा, इन प्रमुख प्रजातियों एवं वंशों के क्रम में कान्तिकेयपुर राजवंश (8वीं से 11वीं ई0) प्रथम ऐतिहासिक राजवंश था, जो समस्त उत्तराखण्ड को एक प्रशासनिक इकाई के रुप में संगठित करने में सफल रहा, यह राजवंश सन् 1197 ई0 में अशोकचल्ल एवं सन् 1223 ई0 में क्राचल्लदेव के आक्रमणों के पूर्व ही पतनोन्मुख हो चुका था, परिणामस्वरुप समस्त उत्त्राखण्ड में पूर्वकालीन सामन्त वर्ग, प्रशासनिक वर्ग ने अपनी स्वतन्त्र सत्ताएं स्थापित करने और उसे स्थापित्व प्रदान करने के लिये निरन्तर संघर्ष की प्रक्रिया को अपनाया, इस प्रक्रिया के कारण जहां एक और लम्बे अन्तराल तक एक सशक्त सत्ता स्थापित नही हो सकी।

(स्रोत : उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास, पृ0 79, सं0 2006)

15वीं शदी में चांदपुरगढ़ में अजयपाल ने उत्थान के फलस्वरुप उसने गढ़वाल के समस्त गढ़ों को विजित कर एक सुविस्तृत राज्य की स्थापना की, अजयपाल के बारे में यह अनुश्रुति प्रचलित है कि ''अजयपाल शिव का भक्त था,

शिव पर अत्याधिक आस्था होने के कारण उन्होनें देवलगढ़ में सत्यनाथ, भैरव तथा गढ़नरेशों की कुल देवी राज राजेश्वरी के मन्त्र की स्थापना की थी''।

अन्ततः यही निष्कर्ष निकलता है कि गढ़वाल का ऐतिहासिक विरासत की परिकल्पना का अन्दाजा यहां के राजाओं द्वारा निर्मित भव्य दुर्ग–प्रासाद, उनकी वास्तुकला को देखकर सहज लगाया जा सकता है, इतना ही नहीं यहां के राजाओं ने गढ़वाल की भूमि में धर्म, कर्म युद्ध सम्बन्धी तथ्यों को जन्म दिया गढ़नरेशों की इस काल में गढ़वाल में अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाने के लिए भूमि दान दी गयी थी। जिसमें देवप्रयाग के वैष्णव मन्दिरों के पूजा–प्रबन्ध के लिए भूमिदान भी प्रमुख है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 अशोक कुमार सिंह – आधुनिक स्त्रातेजिक विचारधारा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा, पृ0 243, सं0 2000,

2. डा0 बलवान सिंह– पंजाब का भू – सामरिक अध्ययन, पृ01, सं0 1996

3. के0 एम0 पणिक्कर– भारतीय सुरक्षा की समस्या, पृ0 96

4. हरिकृष्ण रतूड़ी– गढ़वाल का इतिहास, पृ0 1–2

5. उदय किरौला एवं संजय कमठानिया– उत्तरांचल एक अध्ययन, पृ0 10, सं0 2006

6. डा0 एस0 एस0 नेगी– मध्य हिमालय का राजनीतिक सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 17

7. हरिकृष्ण रतूड़ी– गढ़वाल का इतिहास, पृ0 5

8. प्रो0 अशोक कुमार सिंह– पूर्वोक्त, पृ0 243

9. डा0 नारायण सिंह बिष्ट– उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थव्यवस्था, पृ0 35

10. डा0 शिवप्रसाद डबराल– गढ़वाल पर ब्रिटिश शासन, खण्ड –01, पृ0 35

11. – तदैव –

12. डा0 शिवप्रसाद डबराल– उत्तराखण्ड में भोटांटिक, पृ0 101

13. प्रो0 अशोक कुमार सिंह– पूर्वोक्त, पृ0 248

14. डा0 यशवन्त कठोच– उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास, पृ0 8–9, सं0 2006

15. ललिता प्रसाद नैथानी– गढ़वाली संस्कृति का जागर, सत्यपथ 23 अप्रैल 1980

16. शिवानन्द नौटियाल – गढ़वाल के लोकनृत्य, पृ0 12

17. शंभु प्रसाद बहुगुणा– विराट हृदय, पृ0 23

18. सत्येन्द्र विद्यालंकार– भारतीय संस्कृति तथा उसका इतिहास के साभार,

19. अवोध बन्धु – गढ़वाल में बौद्ध धर्म, देव भूमि के साभार

20. हजारी प्रसाद द्विवेदी , नाथ सम्प्रदाय, पृ0 23

21. ओकले , होली हिमालय, पृ0 93

22. प्रयाग प्रशस्ति – उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग – 1, पृ0 346

23. अभिपुर परकलषामुकम कामिनी वंश गुप्त– शकपतिमणातयव हर्षचरित – 3.6

24. आत्सेकार – गुप्तकालीन मुद्रायें, पृ0 90

25. एटकिन्सन – हिमालय डिस्ट्रिक्ट , पृ0 362

26. त्रिपाठी – हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ0 98

27. डा0 शिव प्रसाद डबारल– उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग – 3, पृ0 40

28. लेख अजय सिंह रावत– गढ़वाल का परमार वंश तथा उनका सम्पादक, पृ0 28

29. ऐसियाटिक रिसर्चेज– जि0 6, पृ0 338

30. राजवंशकाव्य– पृ0 36 – 38

31. एटकिन्सन– पूर्वोत्क , भाग – 2, पृ0 445 – 47

32. डा0 शिव प्रसाद डबराल– उत्तराखण्ड का इतिहास, पृ0 10

33. विलियम्स– मेक्वायर आफ दी देहरादून, पृ0 79

34. एटकिन्सन – पूर्वोत्क (भाग – 2)

35. डा0 शिवप्रसाद डबराल– गढ़वाल का नवीन इतिहास, पृ0 14–15

36. शूरवीर सिंह– फतेहशाह की भूमिका से साभार

37. सभागार – पर्व – 136, द्र0 उ0 दू0 भाग – 2, पृ0 292

38. चातक – गढ़वाली लोकगाथायें, पृ0 199 – 208

39. डा0 शिव प्रसाद – गढ़वाल का नवीन इतिहास, पृ0 24

40. हरिकृष्ण रतूड़ी – गढ़वाल का इतिहास, पृ0 121

41. एटकिन्सन – पूर्वोक्त , पृ0 446

42. हरिकृष्ण रतूड़ी – पूर्वोक्त, पृ0 370

बलैच मैन – आईन – ए – अकबरी, जि01, पृ0 323

44. ओकले एवं गैरोला – हिमालयन फैकलोर, पृ0 10

45. मेक्लागन – जेसुएट्स एण्ड दि ग्रेट मुगल्स, पृ0 345

46. शूरवीर सिंह – अभिलेख एवं दस्तावेज, पृ0 6

47. मेक्लागन – जेसुएट्स एण्ड दि ग्रेट मुगल्स, पृ0 345

48. उल – मआसिर – उमरा जि0 3, पृ0 104

49. अली अयर – मुगल नोविलिटी अण्डर औरंगजेब, पृ0 209–211

50. छावड़ा – ऐण्ड हिस्ट्री आफ पंजाब, जि0 1, पृ0 264–65

51. मौलाराम – गढ़राज्यवंश काव्य, पृ0 61–62

52. टिहरी राज्य अभिलेखागार – रजि0 सं0 4, पृ0 09–10

53. भक्तदर्शन – गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां, पृ0 110

54. मौलाराम – गढ़राजवंश काव्य, पृ0 62

55. डा0 शिवप्रसाद डबराल – गढ़वाल के इतिहास की नई सामग्री, पृ0 661

56. विलिमोर – हिस्टोरिकल रिकार्ड आफ दी सर्वे आफ इण्डिया, जि0 1, फलक 06

57. भण्डारी – नेपाल की ऐतिहासिक विवेचना, पृ0 202

58. बालचन्द शर्मा – नेपाल की ऐतिहासिक रुपरेखा, पृ0 238

59. उपाध्याय – नेपाल दिग्दर्शन, पृ0 208–09

60. डा0 शिवप्रसाद डबराल – पूर्वोत्क, पृ0 661

61. ट्रैल – स्केच आंफ कुमायूं, ए0 रि0 जि0 16, पृ0 228

62. विलियम्य – मेक्वायर आंफ देहरादून, पृ0 95

63. मोहन सविता–उत्तरांचल समग्र अध्ययन, पृ0 103–04